जनचेतना का प्रगतिशील कथा-मासिक

ISSN 2454-4450

मूल्य ₹ 40

हंस

मई 2020

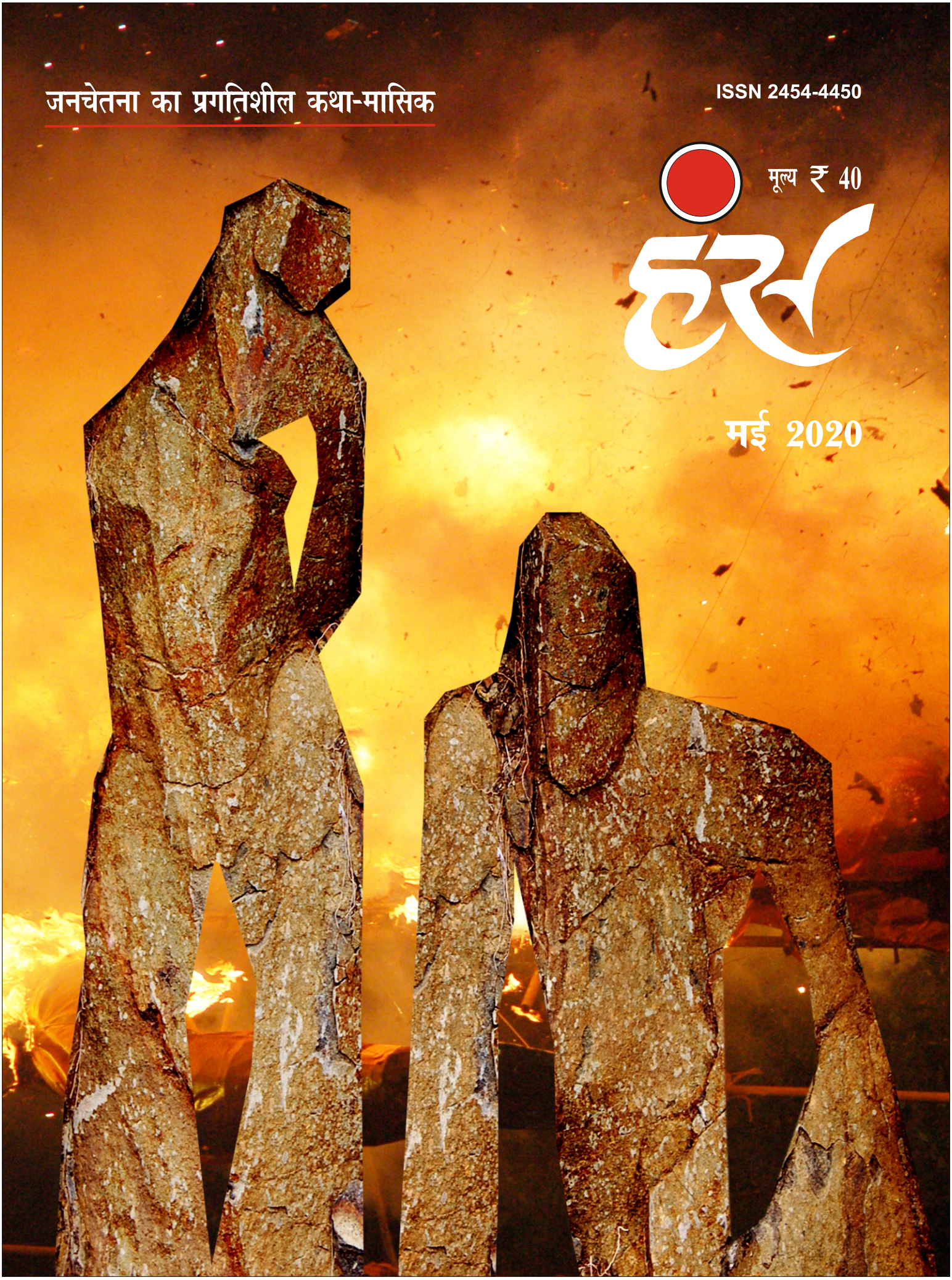

सुषम बेदी का जाना...

रेखा सेठी

न हन्यते

सुषम बेदी हिंदी की प्रिय रचनाकार थीं. यूं तो सभी रचनाकार अपने पाठकों के प्रिय होते हैं लेकिन सुषम जी अपने गरिमामय व्यक्तित्व एवं विनम्र शालीनता के साथ प्रिय और लोकप्रिय दोनों थीं. किसी भी साहित्यिक कार्यक्रम में जाइए, जहां सुषम जी होंगी कुछ लोग (विशेष रूप से छात्र) उनके साथ फोटो खिंचवाने का अवसर ढूंढने लगते और सुषम जी ने भी कभी किसी को निराश नहीं किया. उनकी आंखों में एक मासूम भोलापन था. बच्चों जैसी जिज्ञासा, जो जीवन के हर पल का जश्न मनाना जानती थी.सुषम बेदी से मेरा परिचय लगभग पंद्रह साल का रहा है. उनसे जब भी मिलना हुआ हर बार परिचय गाढ़ा होता गया.

2005 दिसंबर में,सुषम जी भारत में थीं और हमने उन्हें अपने कॉलेज में आमंत्रित किया. वे इंद्रप्रस्थ कॉलेज की पूर्व-छात्रा रही हैं, इस नाते कॉलेज से उनका रिश्ता और गहरा था. जब वे आईं तो एक खास आकर्षण उनके पूरे व्यक्तित्व से झलक रहा था, जिसे अंग्रेजी में 'लेडीलाइक' कह सकते हैं. 'मैनर' और 'एटिकेट' से भरपूर. अपनी बात बहुत मिठास के साथ धीरे-धीरे रखतीं. कहीं भी स्वर उत्तेजित नहीं होता लेकिन अपने कहे की दृढ़ता उनकी आंखों में उतर आती. उन्होंने छात्राओं के बीच अपनी एक कहानी पढ़ी और फिर भारत और

सुषम बेदी

अमरीका की जीवन-शैली के अंतर पर बात चल निकली. उन्होंने बताया कि कैसे 'अमेरिका की जो जीवन-शैली है उसमें लड़कियों पर सामाजिक दबाव उतने नहीं होते तो यहां भी लड़कियों को कोशिश करनी चाहिए कि वे अपना जीवन खुल कर जिएं.' औपचारिक चर्चा के बाद हम दोनों साथ-साथ कॉलेज घूमने लगे. वे पीछे स्विमिंग पूल तक जाकर देखना चाहती थीं कि अब खेल का मैदान और तरणताल कैसा है? रास्ते में हमारी बातें होती रहीं. उन्होंने कहा कि 'अब के हिंदुस्तान को देखकर उन्हें बहुत अच्छा लग रहा है. युवा जोड़े साथ-साथ नजर आते हैं. पहले तो लड़के और लड़कियों के साथ होने पर इतनी बंदिशें थीं जो काफी अस्वाभाविक था.' मुझे उनका ऐसा कहना बहुत रोचक लगा. मैं उन्हें देखती रही. मेरे सामने एक साठ साल की महिला थी जो नैतिकता के सवाल पर, मूल्यों की दुहाई देकर दुनिया के बदल जाने का रोना रोने की बजाय खुश हो रही थी कि युवा वह जीवन जी पा रहे हैं, जैसा कि उनको जीना चाहिए. उनकी आंखों में बहुत मिठास और पूरा कनविक्शन था. जैसे उन्हें पूरा विश्वास हो कि वह जो कह रही हैं, बस वही ठीक है. उनकी बातचीत में धर्म पर होने वाली लड़ाइयों या अन्य अंधविश्वासों से जुड़े संदर्भों पर भी चर्चा हुई और उन्होंने लड़कियों से ताकीद की कि 'उन्हें नए जमाने में नए सिरे से जीना सीखना चाहिए और जीवन में ऐसे समझौते नहीं करने चाहिए जो उनसे पहली पीढ़ी को घुट्टी में पिलाए गए थे.' उनकी यह बात मेरे मन में अटक गयी, 'नए जमाने में नई तरह जीना'. मैं उनके लेखन को इस नजरिए से परखने लगी. अपने जीवन में उन्होंने हमेशा सामाजिक रूढ़ियों के दबावों को परे करके रचनाशील होने का अभ्यास किया.

सुषम जी ने कविता, कहानी, उपन्यास सभी लिखे लेकिन ज्यादातर उनकी कहानियों और उपन्यासों की ही चर्चा हुई. अपने लिखने को लेकर वे बड़े मजेदार ढंग से बताती थीं कि कैसे कहानियां स्वयं उनके भीतर कुलबुलाने लगती हैं. लिखना उन्होंने स्कूल-कॉलेज के दिनों से ही शुरू कर दिया था. 'कॉलेज में किसी गंभीर विषय पर आलोचना लिखने को कहा जाता तो मेरे अंदर बड़े जोर से कहानी आने लगती और जब तक मैं रात भर जाग कर वह कहानी लिख नहीं लेती मुझसे कोई और काम नहीं होता.' तो कथा-कहानियां उनके पास यूं ही चली आतीं. उन्होंने ग्यारह उपन्यास लिखे– हवन, लौटना, कतरा-दर-कतरा, इतर,

गाथा अमरबेल की,नव भूम की रस कथा, मोर्चे, मैंने नाता तोड़ा,पानी केरा बुदबुदा और चार कहानी संकलन–चिड़िया और चील, यादगारी कहानियां, तीसरी आंख, सड़क की लय. उनके कविता संग्रह हैं–शब्दों की खिड़कियां तथा इतिहास से बातचीत. उनकी अधिकांश प्रकाशित कृतियां उनके विदेश प्रवास के बाद ही लिखी गईं लेकिन अपने लिए प्रवासी लेखन की अलग नाम-पट्टी उन्हें कतई स्वीकार नहीं थी. वे बड़ी अदा से कहतीं,'तो क्या मैं भारतीय नहीं हूं?'

संभवतः सभी प्रवासी लेखकों के लिए अस्मिता का द्वंद्व बहुत तीव्रता से कचोटता रहता है. इसीलिए दो परिवेशों के बीच त्रिशंकु की-सी स्थिति उनके लेखन की केंद्रीय थीम है. सुषम जी के उपन्यासों और कहानियों में भी यही थीम बार-बार नए सिरे से रूप बदल-बदलकर आती है. फिर भी अपनी ऐसी किसी भी पहचान से उन्हें परहेज रहा जिसमें उन्हें भारतीय लेखक के अतिरिक्त किसी और रूप में देखा जा सकता है. उनका पहला उपन्यास 'हवन' (1989) अमरीकी परिवेश में भारतीय मन और संस्कार की टकराहट को अत्यंत तीव्रता के साथ उपस्थित करता है. उस समय इस विषय पर कोई उपन्यास नहीं लिखा गया था. कुछेक कहानियां अवश्य आई थीं. सुषम जी ने इस उपन्यास के साथ हिंदी में इस स्थिति को उपन्यास के विस्तृत कैनवस पर बुना.

सुषम जी के लिए यह उनके बहुत करीब की स्थिति थी. उनका कहना था कि उनसे पहले विदेशी परिवेश पर जो लेखक लिख रहे थे चाहें वे निर्मल वर्मा हों या कृष्ण बलदेव वैद, वे कुछ समय विदेश में रहकर वापस अपने देश लौट आए थे और उनकी गिनती भारत के हिंदी लेखकों में होती थी पर उन जैसे लेखक, जो आठवें-नवें दशक में अमेरिका में जाकर बसे और यहीं बस गए, उनकी स्थिति कुछ भिन्न थी. 'हवन' उपन्यास का अनुवाद अंग्रेजी में हुआ जिसे ऑक्सफोर्ड ने दक्षिण एशियाई साहित्य की एक सीरीज के अंतर्गत छापा. उसमें बाकी उपन्यास रवीन्द्रनाथ टैगोर से लेकर पाकिस्तान, बांग्लादेश आदि के प्रतिनिधि लेखकों के थे. 'हवन' उपन्यास का चयन इसलिए किया गया था कि वह हिंदी साहित्य में एक नई धारा का प्रतिनिधित्व कर रहा था. अमेरिका में हिंदी डायस्पोरा के प्रतिनिधि के रूप में हिंदी साहित्य में विकसित होने वाली प्रवासी लेखन की नई धारा को रेखांकित करने के लिए इस उपन्यास की विशेष उपस्थिति बनी. इस उपन्यास को इस शृंखला के अंतर्गत लिए जाने से सुषम जी के लिए विश्व साहित्य के दरवाजे खुल रहे थे लेकिन उनके मन में अफसोस भी था क्योंकि वे बार-बार यही कहतीं कि 'भारतीय लेखन की मुख्यधारा में होना ही मेरा अभीप्सित था और अमरीका तब तक मेरे लिए एक अस्थायी निवासी था. अपना इस तरह देखा जाना मुझे भला नहीं लगा. भीतर एक मूक विरोध उठता रहा कि मैं अमेरिकी साहित्यकार भला कैसे हो गई? अमेरिका की भाषा तो हिंदी है ही नहीं, तब भला अमेरिकी लेखक कैसे? वहां तो मुझे अंग्रेजी के जरिए से ही जितना जानते हैं, सब जानते हैं या अमरीका के हिंदी पढ़ने वाले भी हिंदी की लेखिका के रूप में. यही मेरी पहचान थी. अब एक अलग पहचान थोपी जा रही थी मुझ पर जबकि वह मेरी पहचान बन ही कैसे सकती है. अगर अमेरिकी लेखक होना था तो फिर अंग्रेजी में लिखती.' उनका यह आग्रह अंत तक बना रहा. हालांकि बाद के वर्षों में उन्होंने प्रवासी लेखन की अपनी विशिष्टता पर गंभीरता से विचार किया और उसे दोहरी संवेदनाओं की मिलन भूमि के रूप में देखा.

1993 में लंदन में कॉमनवेल्थ के साहित्य सम्मलेन में, दक्षिण एशियाई उपन्यासों का लोकार्पण हुआ. इस कार्यक्रम में उन्हें ऑक्सफोर्ड की ओर से आमंत्रित किया गया. वहां आमंत्रित लेखकों में वे उम्र में सबसे छोटी थीं. यू.के. में भारतीय लेखकों गिरीश कर्नाड, अनंतमूर्ति, मृणाल पांडे आदि सब के अनुवाद हुए थे और अनुवाद साहित्य-उत्सव के केंद्र में थे. यह सब उनके लिए नितांत नया अनुभव था और उससे उनके मन में यह धारणा दृढ़ होने लगी कि 'हिंदी के लेखक कहलाने लायक लोग वही हैं, जो भारत में छपने वाली मुख्य साहित्यिक पत्रिकाओं में छपते हैं. वही असली कसौटी है और जो यहां नहीं छपते, वे कितने भी बड़े लेखक क्यों न हों, उनकी पहचान नहीं बन पाती.' इसके बाद उन्होंने तय किया कि उनकी कहानियां *हंस, धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्तान* जैसी मुख्य पत्रिकाओं में छपती रहें और यही पत्रिकाएं वे खुद भी पढ़ती रहीं. अमरीका से लिखने वाले बहुत कम लोग ही थे जो इन पत्रिकाओं में छपते थे. हिंदी कथा लेखन में उषा प्रियंवदा का नाम जरूर आता था लेकिन उनके अतिरिक्त कोई ज्यादा लेखक नहीं थे.

नवंबर 2019 में सुषम जी भोपाल में होने वाले साहित्य उत्सव 'विश्वरंग' में शामिल होने भारत आई थीं. उस कार्यक्रम में मैं भी उनके साथ थी. यद्यपि हम अलग-अलग होटल में ठहरे थे लेकिन पूरा-पूरा दिन लगभग साथ रहते थे. वहीं मैंने उनसे एक लंबा इंटरव्यू रिकॉर्ड किया. हमने तरह-तरह की बातें कीं. निजी जीवन से लेकर, उनके लेखन तक और फिर प्रवासी साहित्य पर. सुषम जी की यह बड़ी खासियत थी कि अपनी सोच और पूरी बातचीत में वे साफ और दो-टूक बात करती थीं, बिना किसी दुराव या

आग्रह के. कुछ बातें वे बार-बार करती थीं जैसे उनकी पहली कहानी, 'जमी बर्फ का कवच' का 'कहानी' पत्रिका में छपना. इस विषय पर बात करते ही उनकी आंखों में चमक आ जाती जैसे अतीत में लौट गई हों और 'कहानी' पत्रिका के तत्कालीन संपादक श्रीपतराय की बात अब भी उनके कानों में गूंजती है कि 'लिखती रहना, लिखने से हाथ खुल जाता है.' जिस तरह का उत्साह और रोमांच किसी स्कूल की लड़की को किसी बड़े लेखक की सम्मति मिलने से हो सकता है, हर बार यह किस्सा सुनाते हुए सुषम जी की आंखों में वही रोमांच उतर आता. यूं भी उनके स्वभाव की सहजता में थोड़ा जोश और नटखटपन था जो उनके साथ बिताए पलों को यादगार बना देता.

उनके पास ऐसे कई यादगार किस्से थे. जब ब्रसेल्स में अज्ञेय जी से मिलना हुआ और उनके कहने पर उन्होंने नवभारत टाइम्स के लिए बेल्जियम के साहित्यिक-सांस्कृतिक जीवन पर लिखना शुरू किया. विदेश जाने से पहले दूरदर्शन में नाटकों में काम किया और फिर कहानियां लिखते-लिखते जब एक दिन राजेन्द्र यादव ने यूं ही कह दिया कि उपन्यास लिखो तो 'हवन' लिखना शुरू कर दिया. उनके हर काम में एक 'स्पोनटेनिटी' का भाव था, जैसे जिंदगी कोई चुनौती हो और उसे मजे लेकर जीना है. जो करना है उसमें पूरी तरह रम जाना है. एक बार मैंने उनसे उनकी कहानियों और उपन्यासों के पात्रों के विषय में पूछा कि आप कैसे तय करती हैं कि 'पात्र के चित्रण के प्रति लेखकीय व्यवहार क्या होगा?' उन्होंने झट से जवाब दिया कि 'यह सब उन्होंने कभी नहीं सोचा, बस कहानियां उनके भीतर जाग जाती हैं.' मैं बस उन्हें देखती रही. मेरे सामने वह लेखक थीं जिन्होंने चार दशक की लेखकीय यात्रा को इतनी सहजता से पार कर लिया और स्रष्टा या लेखक होने का दंभ उन्हें छू भी नहीं गया था. एक व्यक्ति के रूप में जो पारदर्शिता उनके व्यक्तित्व में थी, वही उनके लेखन में भी थी.

2015 में न्यू जर्सी की रट्गर्स यूनिवर्सिटी में हिंदी की एक बड़ी कॉन्फ्रेंस होने जा रही थी. मैंने भी उसके लिए अपना पर्चा भेजा था. सुषम जी को पता चला तो उन्होंने कहा कि 'मैं चाहूंगी कि साहित्य पर मेरा एक सेशन होने वाला है, मैं चाहूंगी कि तुम उसमें शामिल रहो.' लेकिन मैंने तो अपना पर्चा 'दिल्ली विश्वविद्यालय में हिंदी शिक्षण' को लेकर भेजा था. दिल्ली से निकलने के दो दिन पहले मुझे सुषम जी का फोन आया और उन्होंने बताया कि वे उस कॉन्फ्रेंस में एक कहानी वर्कशॉप करने वाली हैं. अमेरिका में जितनी भी ऐसी कॉन्फ्रेंस होती थीं, उनमें सुषम जी की कहानी वर्कशॉप बहुत लोकप्रिय थी.'कहानी मंच' बनाने का भी एक विचार बन रहा था. उसकी प्रक्रिया यह थी कि सब अपनी-अपनी कहानी पढ़ते और फिर उन कहानियों पर परिचर्चा होती. कहानी लिखने की विधि बताई जाती और उसे कैसे सुधारा जा सकता है या सराहा जा सकता है, इस पर बातचीत होती थी. उन्होंने उस कहानी वर्कशॉप में मुझे अपनी कहानी पढ़ने को आमंत्रित किया लेकिन इस बार भी मैंने उनसे कहा कि मैं तो कहानी लिखती ही नहीं. मैं तो केवल आलोचना के क्षेत्र में काम करती हूं तो उन्होंने मुझे कहानियों पर टिप्पणी करने के लिए एक्सपर्ट की हैसियत से उस में भागीदारी करने का अवसर दिया. साथ ही एक और दायित्व दिया कि मैं एक शोध-पत्र प्रस्तुत करूं जिसमें हिंदी में कथा लेखन और हिंदी में प्रवासी कथा लेखन का तुलनात्मक अध्ययन हो. कॉन्फ्रेंस में जाने से दो दिन पहले यह दायित्व मुझे काफी बड़ा लगा पर मैं उन्हें नहीं कह सकी. मैंने बहुत-सी कहानियां, किताबों के अंश फोटो कॉपी किए और अमेरिका जाने वाली चौदह घंटे की फ्लाइट के लिए अपना काम तय कर लिया. यह मेरी पहली अमेरिका यात्रा थी. सुषम जी वहां कोलंबिया यूनिवर्सिटी में पढ़ाती थीं. इतनी लंबी फ्लाइट और ठीक सात समंदर पार करके दुनिया के दूसरे कोने में पहुंचने का उत्साह और घबराहट दोनों शामिल थे पर वहां जिन लोगों ने बहुत कुछ सरल बना दिया और जिन से फिर बहुत घनिष्ठ रिश्ते बने उनमें सुषम जी रहीं. न्यूयॉर्क यूनिवर्सिटी की प्रोफेसर गैब्रिएला निक इलिएवा इस सम्मेलन की प्रेरक सूत्रधार थीं और सुषम जी की घनिष्ठ मित्र भी जो 1995 से उनकी अभिन्न रही हैं. हिंदी सेवी अनूप भार्गव तथा न्यूयॉर्क में ही हिंदी पढ़ाने वाली उनकी पत्नी रजनी भार्गव, अनिलप्रभा जी और भी कुछ लोग जिनके नाम मुझे याद नहीं लेकिन उनकी उपस्थिति और सुषम जी से उनका स्नेह संबंध मुझे बखूबी याद है. सब एक बड़े परिवार की तरह थे.सुषम जी सबके बीच काफी लोकप्रिय थीं. कहानी के सेशन में उन्होंने अपनी एक कहानी 'स्विमिंग पूल' सुनाई. कहानी में दो संस्कृतियों के बीच की टकराहट को साफ पढ़ा जा सकता था. एक भारतीय लड़की जो अमेरिका में पहुंच गई थी और स्विमिंग पूल का उसका अनुभव बिल्कुल नया था. भारत में तो वस्त्रों के बिना या स्विमिंग पूल में जाते हुए भी अंत तक तौलिया लपेटकर ही आगे बढ़ती रही जबकि वहां उसने देखा कि अमेरिकी महिलाएं अपने देह के प्रति बेफिक्री से स्विमिंग पूल में तैरने के बाद नग्न नहा रही हैं. जैसे उनको अपने आसपास किसी के होने का एहसास न हो. इस कहानी की व्याख्या करते हुए मैंने इस अंतर की ओर ध्यान

दिलाया कि जिस देश की संस्कृति में देह का कोई महत्त्व नहीं, 'फूटा कुम्भ जल-जल ही समाना' के भाव से देह उस फूटे कुंभ की तरह है जो जल के जल में समाने का जरिया भर है, वहां देह की पवित्रता तथा देह को लेकर कितने बंधन हैं. जबकि अमेरिकी संस्कृति में देह को लेकर इतना विचार विमर्श होता है और फिर भी देह के प्रति एक लापरवाही का भाव है. उन्हें यह व्याख्या बहुत पसंद आई और हमारे बीच व्यक्तिगत दोस्ती के साथ-साथ एक वैचारिक घनिष्ठता की भी शुरुआत हुई.

उनके कई उपन्यासों और कहानियों के अंत पर मेरा इत्तेफाक नहीं भी होता था. मुझे ताज्जुब होता कि जिस सुषम बेदी को मैं जानती हूं वह तो बहुत तरक्कीपसंद हैं जो मेरी छात्राओं से भी यह कहती हैं कि 'नए जमाने में नयी तरह से जीना सीखो' तो फिर उनकी नायिकाएं इस तरह के समझौते कैसे कर सकती हैं? खासतौर पर 'लौटना' उपन्यास पढ़ने के बाद मुझे कुछ निराशा हुई थी. जब मैंने सुषम जी से पूछा तो उन्होंने कहा कि यदि 'तुम इसे स्त्री-विमर्श के नजरिए से पढ़ोगी तो निराशा ही होगी लेकिन अगर यह सोचकर पढ़ो कि यह सब व्यवस्थाएं उन स्त्रियों के साथ आईं जो भारत से अमेरिका आईं और भारत के संस्कार अपने मन में लिए आईं. उनके लिए बिल्कुल नाता तोड़ लेना या जिसे यूं कहें कि रेडिकल परिवर्तन से जीवन जीना और सोचना इतना आसान नहीं था.' लेकिन बाद में जब उन्होंने 'मैंने नाता तोड़ा' उपन्यास लिखा तो अपने मन में उन्होंने इस परिवर्तन को आत्मसात कर लिया था कि एक लड़की अपनी अलग पहचान बनाकर विदेश की मिट्टी में सिर उठाकर जीने का फैसला कर सकती है. उनका कहना था कि 'उसे यह दृढ़ता और आत्मविश्वास बहुत हद तक अमरीकी परिवेश से मिलता है.'

सुषम जी ने खुद भी अमरीकी परिवेश से बहुत कुछ सीखा था. वे उन सभी तत्वों को ग्रहण करने के लिए उत्सुक रहतीं जो उन्हें प्रगतिशील लगते, फिर चाहें वह जिस भी समाज और संस्कृति से आते हों. किसी भी व्यक्ति की निजता का सम्मान अमेरिकी समाज में रहते हुए और दृढ़ हो गया और एक तरह से जीवन-मूल्य बन गया. उनकी बातचीत और व्यवहार में वह सब सहज झलकता. हिंदुस्तान में कभी जब उनसे छोटी उम्र के लोग उन्हें 'मैम' कहते तो वह हंसती क्योंकि अमेरिका में तो छात्र भी उन्हें उनके नाम से पुकारते थे और वही उनके लिए अधिक सहज था क्योंकि उससे किसी तरह का अनुक्रम नहीं रहता था. आप बातचीत करते हुए एक साथ एक धरातल पर होते हैं. यही उन्हें अधिक सुखकर लगता.

रिश्तों को निभाना वे बखूबी जानती थीं. पूरे देश-दुनिया में फैला उनके मित्रों का घेरा, एक तरह से उनके चाहने वालों का घेरा है. उनके जाने के बाद ये सब लोग सुषम जी को याद करते हुए एक-दूसरे से जुड़ रहे हैं और अपने अनुभव साझा कर रहे हैं. इन सबकी बात करते हुए उनके पति राहुल बेदी की बात न करूं तो शायद सुषम का होना ही अधूरा रह जाएगा. बहुत कम दंपती ऐसे होते हैं जो एक दूसरे को इतना टूटकर चाहते हों. मुझे सुषम जी से अपनी कोई बातचीत याद नहीं जब किसी न किसी रूप में राहुल जी का जिक्र न आया हो. कई बार तो उन्होंने उनसे अपने संबंध के बहुत निजी प्रसंग भी साझा किए. जब हम भोपाल में मिले तो उन्होंने कई बार कहा कि राहुल ने मुझे कभी किसी बात के लिए नहीं रोका लेकिन इस बार मेरी तबियत की वजह से वे मुझे बार-बार यही कहते रहे कि 'क्यों जा रही हो?' आज भी शायद राहुल जी खुद को संयत नहीं कर पा रहे हैं. यह जानते हुए भी कि उस राह से कोई लौटता नहीं और सबको यह अंतिम यात्रा अकेले ही करनी होती है. राहुल जी खुद को यह पूछने से रोक नहीं पाते, 'क्यों जा रही हो?'

10 नवंबर, 2019 की शाम मैं उन्हें आखिरी बार मिली थी. भोपाल में हम सब साथ थे. खूब बातें हुईं. जनवरी में हमारे कॉलेज में एक अंतरराष्ट्रीय सम्मलेन होने वाला था, वे उसमें कहानी वर्कशॉप करने की योजना बना रही थीं. हमने कॉलेज के अनुवाद एवं अनुवाद अध्ययन केंद्र में उनकी कहानी का अंग्रेजी अनुवाद किया था. यह वही कहानी थी जिसका प्रकाशन 'हंस' के प्रवासी साहित्य विशेषांक में हुआ था. यह अधेड़ होती कौशल्या के 'कितने-कितने अतीत' को याद करने की कहानी है जिसमें मृत्यु की आहट थी...वे जनवरी में नहीं आ पायीं. भोपाल में जब हम अंतिम बार मिले थे उन्होंने इतनी आत्मीयता से मेरा हाथ अपने हाथों में लेते हुए प्यार से देखा और कहा कि 'वे मुझे कितना मानती हैं.' उस स्नेह में कुछ ऐसी ताकत थी कि न जाने क्यों मुझे तब ही भ्रम हुआ कि फिर शायद हम ऐसे कभी न मिल पाएं. आज रह-रहकर उनकी वह छवि याद आ रही है. उनके हाथों की नरमी और गर्माहट को मैं अब भी अपने हाथों पर महसूस कर पा रही हूं. अलविदा सुषम जी!

❐

संपर्क : एसोसिएट प्रोफेसर
इंद्रप्रस्थ महिला कॉलेज, दिल्ली यूनिवर्सिटी, दिल्ली
ईमेल : reksethi@gmail.com